ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal) | Impact Factor: 7.580|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 7, July 2019

दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता- एक विश्लेषण

SUSHEELA DEVI YADAV

ASSISTANT PROFESSOR, POLITICAL SCIENCE, V.N.P. GOVT. COLLEGE, SIWANA, BARMER, RAJASTHAN, INDIA

सार

भारतीय राजनीतिक चितंन में दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ के संगठन और विचारधारा को आकार देने में जैसी भूमिका निभाई वह अविस्मरणीय है। यह तर्क दिया जा सकता है कि भारतीय राजनीति में उपाध्याय का योगदान मुख्य रूप से पार्टी निर्माण के क्षेत्र में था। इसमें कोई अतिश्योक्ति भी नहीं है, क्योंकि उन्होंने लगभग पंद्रह वर्षों तक पार्टी सचिव के रूप में काम किया और उन्होंने जनसंघ को एक महत्वपूर्ण राजनीतिक ताकत मंय बदलने हेतु अपने संगठनात्मक कौशल का परिचय दिया। वह निश्चित रूप से राजनीतिक मुद्दों में गहरी रुचि रखने वाले व्यक्ति थे और उन्होंने भारतीय राजनीतिक चिंतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक एवं सामाजिक चितंन की मूल अवधारणा के साथ एकात्म मानववाद का विचार जुड़ा हुआ है। उन्होंने अप्रैल 1965 में पूना में दिए गए चार व्याख्यानों में इसे व्यवस्थित उपचार दिया है। इस मामले पर उनकी सोच के तत्वों को जनसंघ के सामने चर्चा के लिए पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका था और उन्हें अपनाया गया था। उपाध्याय ने दिसंबर 1967 में कालीकट में जनसंघ के चौदहवें वार्षिक सत्र में अपने अध्यक्षीय भाषण में व्यावहारिक राजनीति में एकात्म मानववाद को लागू करने के लिए व्यवस्थित कदम उठाया। किंतु दो महीने बाद उनकी असामयिक मृत्यु ने इन बुनियादी सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा के लिए आगे के प्रयासों को कम कर दिया। पार्टी में जिन लोगों को उनकी विचारधारा विरासत के रूप में मिली, उन्होंने इस संबंध में उनके प्रयासों को जारी रखा। नतीजतन, यह विचारधारा राजनीतिक समीक्षा करने के लिए एक उपयोगी शस्त्र साबित हुई। राजनीतिक दार्शनिक का कार्य यह स्पष्ट करना है कि मनुष्य का स्वभाव वास्तव में कैसा है? इस आधार पर एक अच्छी राजनीतिक व्यवस्था की शर्तों को परिभाषित किया जा सकता है। उपाध्याय ने एकात्म मानववाद पर अपने पूना व्याख्यान में यह कार्य स्वयं के लिए निर्धारित किया था, जो आगे चलकर मनुष्य-मात्र के लिए अनुकरणीय बन गया। समाज में मनुष्य की भूमिका का निर्धारण करते हुए कहा था- "भारत में समकालीन राजनीति मनुष्य की समझ और समाज में उसकी भूमिका पर आधारित थी। स्वतंत्रता के बाद के भारत के राजनीतिक नेतृत्व ने अच्छे समाज की पश्चिमी धारणाओं को भारतीय परिस्थितियों में लागू करने का प्रयास किया था, किन्तु उसके परिणाम असंतोषजनक थे। आर्थिक विकास धीमा था, बेरोजगारी और शोषण बढ़ गया था, राष्ट्रीय एकीकरण कमजोर हो गया था, और सांस्कृतिक प्रगति धीमी थी"। इसके अलावा, उनका मानना था कि पश्चिमी सामाजिक, राजनीतिक विचार के प्रमुख स्कूल पश्चिम में ही मानवीय स्थिति को मौलिक रूप से सुधारने में विफल रहे हैं। राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और समाजवाद, उनकी राय में, कई भारतीयों द्वारा अनजाने में स्वीकार किए गए थे। इन्होंने अच्छे जीवन के लिए मानवीय खोज को केवल आंशिक समाधान ही प्रदान किये हैं और राष्ट्रवाद ने विश्व शांति के लिए खतरा ही पैदा कर दिया। जब लोकतंत्र को पूंजीवाद से जोड़ा गया, तो उसने शोषण को शासन के साथ जोड़ दिया। समाजवाद, लोकतंत्र-पूंजीवाद से जुड़ी अवधारणा की प्रतिक्रिया ने व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को लूट लिया। इन राजनीतिक अवधारणाओं में से प्रत्येक पर बल देते हुए उन्होंने कहा था, कि इन अवधारणाओं ने भौतिक अधिग्रहण को बढ़ा दिया। इस तरह लालच, वर्ग विरोध, शोषण और सामाजिक अराजकता को प्रेरित किया। यदि ऐसा है, तो भारत के लिए उपयुक्त मार्गदर्शक राजनीतिक सिद्धांत कौन से हैं? प्रस्तुत शोध-पत्र दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की वर्तमान समय में क्या प्रांसगिता है विषय को लेकर लिखा गया है। सूचना, संचार एवं प्रौद्योगिकी के कारण बदलते परिवेश में क्या उनका दर्शन आज भी प्रासंगिक है? ये ऐसे ज्वलंत प्रश्न है जिन्हें इस शोध-पत्र में उठाया गया है।

IJMRSETM

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal) | Impact Factor: 7.580|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 7, July 2019

परिचय

राजनीति में लगातार सक्रियता के बाद भी वह अध्ययन व लेखन के लिये समय निकालते थे। इसके लिये वह अपने विश्राम से समय की कटौती करते थे। इसी में लोगों से मिलने-जुलने और अनवरत यात्राओं का क्रम भी चलता था। आमजन के बीच रहना उन्हें अच्छा लगता था। शायद यही कारण था कि वह देश के आम व्यक्ति की समस्याओं को भलीभांति समझ चुके थे। यह विषय उनके चिंतन व अध्ययन में समाहित था। इन समस्याओं का उन्होंने कारगर समाधान भी प्रस्तुत किया।

दीनदयाल उपाध्याय राजनेता के साथ-साथ उच्च कोटि के चिंतक, विचारक और लेखक भी थे। इस रूप में उन्होंने श्रेष्ठ, शक्तिशाली और संतुलित रूप में विकसित राष्ट्र की कल्पना की थी। उन्होंने निजी हित व सुख सुविधाओं का त्याग कर अपना जीवन समाज और राष्ट्र को समर्पित कर दिया था। यही बात उन्हें महान बनाती है।[1]

राजनीति में लगातार सक्रियता के बाद भी वह अध्ययन व लेखन के लिये समय निकालते थे। इसके लिये वह अपने विश्राम से समय की कटौती करते थे। इसी में लोगों से मिलने-जुलने और अनवरत यात्राओं का क्रम भी चलता था। आमजन के बीच रहना उन्हें अच्छा लगता था। शायद यही कारण था कि वह देश के आम व्यक्ति की समस्याओं को भलीभांति समझ चुके थे। यह विषय उनके चिंतन व अध्ययन में समाहित था। इन समस्याओं का उन्होंने कारगर समाधान भी प्रस्तुत किया।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर तात्कालिक घटनाओं व विचारों का प्रभाव पड़ता है। चिंतक, मनीषी उन्हें गहराई से समझने का प्रयास करते हैं। वह इस पर विचार करते हैं कि अपने देश व समाज के लिये कौन-सा मार्ग कल्याणकारी होगा। पं. दीनदयाल ने यही किया।

वह भविष्य द्रष्टा थे। भविष्य की समस्याओं को देख रहे थे। उनके प्रति वे सावधान करते रहे। उन्होंने उस समय चर्चित विचारधाराओं या वाद पर गहनता से विचार किया था। संयोग से वह विश्व में शीतयुद्ध का दौर था। एक तरफ पश्चिम का उपभोगवाद था, दूसरी तरफ मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओवाद था। समाजवाद का विचार भी अस्तित्व में था। सोशलिस्ट पार्टियां भी सक्रिय थीं। दीनदयाल उपाध्याय ने इन सब पर विचार किया।

पाश्चात्य चिंतन उपभोगवाद पर आधारित था। इसके केंद्र में व्यक्ति था। इस सिद्धांत के अनुसार, व्यक्ति को अपनी सुख-सुविधाओं के लिये संलग्न रहने व प्रयास करते रहने का अधिकार है। इस विचार के अनुरूप ही प्राकृतिक संसाधनों का बेहिसाब व बेरहमी से दोहन किया गया जिसके परिणामस्वरूप भौतिक विकास तो हुआ, लेकिन प्रकृति खतरनाक स्तर पर जा रही है।

तरह–तरह के वैश्विक सम्मेलन हो रहे हैं। खूब चर्चा होती है, विशेषज्ञ समस्याओं की चर्चा करते हैं। लेकिन हर बार ढाक के तीन पात। कोई समाधान नजर नहीं आता। उपभोगवाद की दौड़ ने उन्हें जहां पहुंचा दिया है, वहां से लौटना संभव ही नहीं है। उपभोगवाद ने उनके समाज को भी अराजकता की स्थिति में पहुंचा दिया है। समाज बिखर रहा है, परिवार टूट रहे हैं, वृद्धावस्था आश्रम बन रहे हैं। अब वहां विशेषज्ञ रिसर्च पेपरों में विश्लेषण कर रहे हैं। उनका समाजवाद उपभोगवाद में उलझ कर रह गया है। इससे बाहर निकलने का कोई रास्ता फिलहाल नजर नहीं आ रहा है। दीनदयाल उपाध्याय ने इस दृश्य की कल्पना छह दशक पहले कर ली थी। वह इसके प्रति सावधान करते थे।

कम्यूनिस्टों ने भारत को भी विदेशी चश्मे से देखा। इसलिये उन्हें अपने देश में कोई अच्छाई नजर नहीं आती। इन्होंने आत्मगौरवविहीन समाज बनाने का प्रयास किया।[2] यह स्थापित किया कि जो कुछ अच्छा है वह विदेशों से मिला है। हमारा कुछ नहीं, यह विचार उन्होंने प्रसारित किया। केवल सरकार के भरोसे सुधार का विचार भी विफल रहा। विश्व में सोशलिस्ट विचार भी अब केवल सिद्धांतों में बचा है। व्यवहार में कहीं नजर नहीं आता। आज कौन है जो राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि के विचारों पर अमल करता दिखाई देता है।

दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन शाश्वत विचारधारा से जुड़ता है। इसके आधार पर वह राष्ट्रभाव को समझने का प्रयास करते हैं। समस्याओं पर विचार करते हैं। उनका समाधान निकालते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव-दर्शन हमारी ऋषि परंपरा से जुड़ता है। इसके केंद्र में व्यक्ति या सत्ता नहीं है। जैसा कि पश्चिम या वामपंथी विचारों में कहा गया है। इसके विपरीत व्यक्ति, मन, बुद्धि, आत्मा सभी का महत्व है। प्रत्येक जीव में आत्मा का निवास होता है और आत्मा को परमात्मा का अंश माना गया है। इसमें समरसता का विचार है, कोई भेदभाव नहीं है। परिवार का हित हो तो व्यक्ति अपना हित छोड़ देता है। समाज का हित हो तो परिवार का हित छोड़ देना चाहिये। देश का हित हो तो समाज का हित छोड़ देना चाहिये। राष्ट्रवाद का यह विचार प्रत्येक नागरिक में होना चाहिये।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का विचार भी ध्यान रखना चाहिये। सभी कार्य धर्म से प्रेरित होने चाहिये। अर्थात लाभ की कामना हो, लेकिन का शुभ होना अनिवार्य है। एकात्म मानव दर्शन की प्रासंगिकता सदैव रहेगी, क्योंकि यह शाश्वत विचारों पर आधारित है। दीनदयाल जी ने संपूर्ण जीवन की रचनात्मक दृष्टि पर विचार किया। उन्होंने विदेशी विचारों को सार्वलौकिक नहीं माना। यह तथ्य सामने भी दिखाई दे रहे हैं। भारतीय संस्कृति संपूर्ण जीवन व संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। इसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है। टुकड़ों–टुकड़ों में विचार नहीं हो सकता।

दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र की आत्मा से लेकर जैविक खाद व व्यापार तक पर चिंतन करते हैं। उनके अध्ययन व मनन का दायरा कितना व्यापक था, इसकी कल्पना की जा सकती है। वह लिखते हैं कि अर्थव्यवस्था सदैव राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल होनी चाहिये। भरण, पोषण, जीवन के विकास, राष्ट्र की धारणा व हित के लिये जिन मौलिक साधनों की आवश्यकता होती है, उनका उत्पादन अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिये। पाश्चात्य चिंतन इच्छाओं को बराबर बढ़ाने और आवश्यकताओं की निरंतर पूर्ति को अच्छा समझता है। इसमें मर्यादा का कोई महत्व नहीं होता। उत्पादन सामग्री के लिये बाजार ढूंढना या पैदा करना अर्थनीति का प्रमुख अंग है, लेकिन प्रकृति की मर्यादा को नहीं भूलना चाहिये।

खाद्य सुरक्षा की बात अब सामने आई। दीनदयाल जी ने इस पर बहुत पहले ही विचार कर लिया था। उनके अनुसार हमारा नारा यह होना चाहिये कि कमाने वाला खिलायेगा तथा जो जन्मा सो खायेगा। अर्थात खाने का अधिकार जन्म से प्राप्त होता है। बच्चे, बूढ़े, रोगी, अपाहिज सबकी चिंता समाज को करनी पड़ती है। इस कर्तव्य के निर्वाह की क्षमता पैदा करना ही अर्थव्यवस्था का काम है। अर्थशास्त्र इस कर्तव्य की प्रेरणा का विचार नहीं कर पाता।[3]

भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी अर्थव्यवस्था का न्यूनतम स्तर है। आज शिक्षा की व्यवस्था भी चिंता उत्पन्न करती है। एक तरफ महंगी शिक्षा है। इसका लाभ सीमित वर्ग उठा सकता है। दूसरी ओर जहां शिक्षा सस्ती है, उनकी दशा खराब है। वहां मूलभूत सुविधाएं भी नहीं हैं। शिक्षा व्यवसाय का रूप ले चुकी है। जिनका शिक्षा से कोई मतलब नहीं वह शिक्षण संस्थान के संचालक बन गये। दीनदयाल उपाध्याय को इसका भान था इसलिये उन्होंने लिखा था कि शिक्षा समाज का दायित्व है। बच्चों को शिक्षा देना समाज के अपने हित में है।

दीनदयाल जी निःशुल्क चिकित्सा का सुझाव देते हैं, जिसपर वर्तमान मोदी सरकार आयुष्मान योजना के माध्यम से चल भी रही है। वह मानते हैं कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मानव का विकास करने में असमर्थ सिद्ध हुई है। इसके विरोध में समाजवादी अर्थव्यवस्था आई। यह भी विफल हुई। इसने पूंजी का स्वामित्व राज्य के हाथों में देकर संतोष कर लिया।

दीनदयाल जी का अंत्योदय विचार आज भी प्रासंगिक है। भारत में अनेक वाद अपनाये गये। अब तो वैश्विकरण और उदारीकरण को भी लंबा समय हो गया। लेकिन अमीर व गरीब के बीच की खाई कम नहीं हुई। यह व्यक्तिवादी व उपभोगवादी चिंतन का भी परिणाम है। सत्ता व समाज दोनों को जिम्मेदारी से काम करने की दीनदयाल उपाध्याय प्रेरणा देते हैं। समाज के सबसे निचले पायदान पर जो व्यक्ति है, उसके उत्थान का प्रयास प्राथमिकता से होना चाहिये।

भवन निर्माण में पहले छत नहीं बनायी जा सकती। निर्माण नींव से शुरू होता है। इसी प्रकार जब भवन की सफाई करनी होती है तो यह कार्य ऊपर से प्रारंभ होता है। फर्श का नंबर सबसे बाद में आता है। यह समाज और सत्ता दोनों पर लागू होने वाला विचार है। कुल मिलाकर सब क्षेत्रों में दीनदयाल उपाध्याय के विचार आज भी प्रासंगिक हैं। इन्हीं के माध्यम से देश की वर्तमान समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

विचार-विमर्श

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास को लेकर विद्वानों ने अलग-अलग वैचारिक दर्शन प्रतिपादित किए हैं। लगभग प्रत्येक विचारधारा समाज के राजनीतिक, आर्थिक उन्नति के मूल सूत्र के रूप में खुद को प्रस्तुत करती है। पूंजीवाद हो, साम्यवाद हो अथवा समाजवाद, प्रत्येक विचारधारा समाज की समस्याओं का समाधान देने के दावे के साथ आती है। हालांकि इनके दावों की सफलता का प्रश्न अभी भी बहस और चर्चा का विषय है। स्वतंत्रता के बाद भारत में विचारधाराओं का प्रभाव किस प्रकार रहा, इस पर व्यापक चर्चा होती रही है। यह सच है कि जवाहर लाल नेहरू का समाजवादी नीति के प्रति आकर्षण था। नेहरू के उस आकर्षण का परिणाम हुआ कि देश लंबे कालखंड तक समाजवाद की आर्थिक नीतियों के अनुरूप चलता रहा और उसका व्यापक प्रभाव अभी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था में काफी हद तक कायम है।[4]

जब पंडित नेहरू समाजवाद की नीतियों के सहारे देश की दशा-दिशा तय कर रहे थे, तब भारतीय जनसंघ के नेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय अनेक बिंदुओं पर उन नीतियों का न सिर्फ विरोध कर रहे थे, बल्कि भारत एवं भारतीयता के अनुकूल वैचारिक दर्शन की पृष्ठभूमि भी तैयार कर रहे थे। दीन दयाल उपाध्याय समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद को मानव कल्याण का संपूर्ण सूत्र नहीं मानते थे। उनका मानना था कि भारतीय विचार नहीं होने की वजह से यह भारत की समस्याओं से निपटने और समाधान देने में अक्षम हैं। उन्होंने एकात्म मानववाद का ऐसा वैचारिक आदर्श सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसमें मानव को संपूर्णता में एक इकाई मानकर उसकी संपूर्ण जरूरतों को समझने एवं उनकी संतुलित आपूर्ति करने का सूत्र प्रस्तुत किया है।

दीन दयाल उपाध्याय के अनुसार,'व्यक्ति मन, बुद्धि, आत्मा व शरीर का एक समुच्चय है।' अत: मानव के संदर्भ में इन चारों को विभाजित करके नहीं देखा जा सकता है, ये परस्पर अंतर्सम्बद्ध हैं। सरल शब्दों में कहें तो दीन दयालजी द्वारा व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और फिर मानवता और चराचर सृष्टि के बीच अंतर्निहित, पूरक संबंध की आवश्यकता पर विचार किया गया है। वह व्यक्ति को परिवार से, परिवार को समाज से, समाज को राष्ट्र और राष्ट्र को चराचर सृष्टि से अलग करके नहीं देखते। उनका कहना था, प्रत्येक व्यक्ति 'मैं' और 'मेरा' विचार त्यागकर 'हम' और 'हमारा' विचार करना चाहिए। उनके विचार दर्शन में 'यत पिंडे, तत ब्रह्मांडे, अर्थात जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में भी है' का भाव नजर आता है।

मानव की आवश्यकताओं का संबंध भी इसी व्यापकता में है। मनुष्य की जरूरतें भी उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक इच्छाओं के अनुरूप ही होती हैं। अत: एक मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति अथवा उसकी संतुष्टि का समाधान विभाजित करके नहीं खोजा जा सकता है। वह मानवमात्र का हर उस दृष्टि से मूल्यांकन करने की बात करते हैं, जो उसके संपूर्ण जीवन काल में छोटी अथवा बड़ी जरूरत के रूप में संबंध रखता है। उन्होंने मानवमात्र से जुड़े प्रश्न की समाधानयुक्त विवेचना अपने वैचारिक लेखों में की है। भारतीय अर्थनीति का स्वरूप क्या हो, इन विषयों को दीन दयाल उपाध्याय ने 'भारतीय अर्थनीति विकास

की दिशा' में रखा है। धर्म और अर्थ को वह परस्पर संबद्ध करके देखते थे। उनका मानना था कि धर्म सर्वोपरि है, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अर्थ के अभाव में धर्म का पालन नहीं किया जा सकता।

एक प्रसिद्ध उक्ति है- जो भूख से मर रहा हो वह कोई पाप करने से जरा भी नहीं हिचकिचाएगा। दीन दयाल उपाध्याय ने सरकार द्वारा व्यापारिक गतिविधियों में हाथ डालने से असहमति प्रकट की। उनका स्पष्ट मानना था कि शासन को व्यापार नहीं करना चाहिए और व्यापारी के हाथ में शासन नहीं आना चाहिए। 1960 के दशक में जो चिंताएं उन्होंने अपने लेखों तथा विचारों के माध्यम से प्रस्तुत की थीं, वे चार दशक के बहुधा समाजवादी नीतियों वाले शासन प्रणाली में समस्या की शक्ल में दिखने लगी थीं। वह उस दौरान लाइसेंस राज में भ्रष्टाचार की चिंताओं से शासन को अवगत कराते रहे। विकेंद्रित व्यवस्था के वह पक्षधर थे तथा समाजिक क्षेत्रों के अतिवादी राष्ट्रीयकरण के खिलाफ थे। वह जानते थे कि यह देश मेहनतकश लोगों का है, जो अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए राज्य पर आश्रित कभी नहीं रहे हैं।

लेकिन समाजवादी नीतियों से प्रभावित कांग्रेस की सरकारों ने सत्ता की शक्ति का दायरा बढ़ाने की होड़ में समाज की ताकत को राष्ट्रीयकरण के बूते अपने शिकंजे में ले लिया। वे उन्हीं क्षेत्रों में सरकार को उतरने के लिए बोल रहे थे, जिनमें निजी क्षेत्र जोखिम लेने को तैयार नहीं थे अथवा स्थितियां प्रतिकूल थीं। लेकिन तत्कालीन सरकारों द्वारा इसके उलट काम किया गया। दीन दयाल उपाध्याय द्वारा व्यक्त असहमतियों की अनदेखी तत्कालीन सरकारों द्वारा की गई, जिसका परिणाम हुआ कि हमारी व्यवस्था समाजवादी नीतियों के चक्रव्यूह में ऐसे उलझती गई कि अब उसमें से निकलना अथवा निकलने की सोचना कठिन नजर आता है। सरकार आश्रित प्रजा तैयार करने की समाजवादी नीति ने इन 70 वर्षों में समाज को इतना पंगु बना दिया है कि हम स्वच्छता के लिए भी प्रधानमंत्री पर आश्रित हैं! दीन दयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिंतन भी अत्यंत स्पष्ट और पारदर्शितापूर्ण था।

यही वजह है कि 1965 में भारतीय जनसंघ ने उनके वैचारिक दर्शन को पार्टी के मूल दर्शन के रूप में आत्मसात कर लिया। 1950 और 1960 के दशक में उनकी भूमिका एक विचार वाहक की रही। उनके विचारों में भारतीयता के चिंतन की छाप थी। राजनीति में मूल्य, विचारधारा, समर्पण और ध्येय की जो परिभाषाएं दीन दयाल उपाध्याय ने रखीं, वह आज भी भारतीय जनता पार्टी के लिए प्रेरणा वाक्य की तरह हैं।[5] उनका मत था, 'राजनीतिक दलों को अपना एक विचार दर्शन विकसित करना चाहिए, जिससे कि वे राजनीतिक दल कुछ लोगों के निजी स्वार्थों पर टिके झुंड की तरह न बनें।' पंडित दीन दयाल उपाध्याय के विचारों के प्रति आग्रह रखते हुए आयातित विचारधाराओं के तंत्र से निकलकर अंत्योदय के लक्ष्य और एकात्म मानववाद के वैचारिक सिद्धांत को आत्मसात करके ही भारतीयता के मूल स्वरूप में मानव कल्याण के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

परिणाम

दीनदयाल उपाध्याय राजनेता मात्र नहीं थे, वह उच्च कोटि के चिंतक, विचारक और लेखक भी थे। इस रूप में उन्होंने श्रेष्ठ शक्तिशाली और संतुलित रूप में विकसित राष्ट्र की कल्पना की थी। उन्होंने निजी हित व सुख सुविधाओं का त्याग कर दिया था। व्यक्तिगत जीवन में उनकी कोई महत्वाकांक्षा भी नहीं थी। उन्होंने अपना जीवन समाज और राष्ट्र को समर्पित कर दिया था। यही बात उन्हें महान बनाती है। राजनीति में लगातार सक्रियता के बाद भी वह अध्ययन व लेखन के लिये समय निकालते थे। इसके लिये वह अपने विश्राम से समय कटौती करते थे। इसी में लोगों से मिलने जुलने और अनवरत यात्राओं का क्रम भी चलता था। आमजन के बीच रहना उन्हें अच्छा लगता था। शायद यही कारण था कि वह देश के आम व्यक्ति की समस्याओं को भलीभांति समझ चुके थे। यह विषय उनके चिंतन व अध्ययन में समाहित था। इनका वह कारगर समाधान भी प्रस्तुत करते थे। उनका व्यक्तित्व व कृतित्व बहुआयामी है। विभिन्न रूप में उनसे प्रेरणा ली जा सकती है। समाजसेवियों व राजनीति में लगे लोग उनसे प्रेरणा ले सकते हैं। सादगी, ईमानदारी और अध्ययनशीलता उनमें निखार ला सकती है। युवा पीढ़ी उनके जज्बे से प्रेरणा ले सकती है। लेखक उनके विचारों से प्रेरणा ले सकते हैं। लेखन वही अच्छा है, जिससे समाज का हित हो। भावी पीढ़ी को सकारात्मक दिशा मिले। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर तात्कालिक घटनाओं व विचारों का प्रभाव पड़ता है। चिंतक, मनीषी उन्हें गहराई से समझने का प्रयास करते हैं। वह इस पर विचार करते हैं कि अपने देश व समाज के लिये कौन-सा मार्ग कल्याणकारी होगा। पं. दीनदयाल ने यही किया। वह भविष्य द्रष्टा थे। भविष्य की समस्याओं को भी वह देख रहे थे। उनके प्रति वे सावधान करते हैं। उन्होंने उस समय चर्चित

IJMRSETM

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal) | Impact Factor: 7.580|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 7, July 2019

विचारधाराओं या वाद पर गहनता से विचार किया था। संयोग से वह विश्व में शीतयुद्ध का दौर था। एक तरफ पश्चिम का उपभोगवाद था, दूसरी तरफ मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओवाद था। समाजवाद का विचार भी अस्तित्व में था। सोशलिस्ट पार्टियां भी सक्रिय थीं। दीनदयाल उपाध्याय ने इन सब पर विचार किया। पाश्चात चिंतन उपभोगवाद पर आधारित था। इसके केंद्र में व्यक्ति था। व्यक्ति को अपनी सुख सुविधाओं के लिये संलग्न रहने व प्रयास करते रहने का अधिकार है। इस विचार से प्राकृतिक संसाधनों का बेहिसाब व बेरहमी से दोहन किया। भौतिक विकास हुआ। लेकिन प्रकृति खतरनाक स्तर पर जा रही है। तरह–तरह के वैश्विक सम्मेलन हो रहे हैं। खूब चर्चा होती है, विशेषज्ञ समस्याओं की चर्चा करते हैं। लेकिन हर बार ढाक के तीन पात। कोई समाधान नजर नहीं आता। उपभोगवाद की दौड़ ने उन्हें जहां पहुंचा दिया है, वहां से लौटना संभव ही नहीं है। उपभोगवाद ने उनके समाज को भी अराजकता की स्थिति में पहुंचा दिया है। समाज बिखर रहा है, परिवार टूट रहे हैं, वृद्धावस्था आश्रम बन रहे हैं। अब वहां विशेषज्ञ रिसर्च पेपरों में विश्लेषण कर रहे हैं। उनका समाजवाद उपभोगवाद में उलझ कर रह गया है। इससे बाहर निकलने का कोई रास्ता फिलहाल नजर नहीं आ रहा है।

दीनदयाल उपाध्याय ने इस दृश्य की कल्पना छह दशक पहले कर ली थी। वह इसके प्रति सावधान करते थे ऐसा नहीं कि उनका विचार संकुचित था। विदेश नीति व विदेशों से संबंधों पर भी उन्होंने विचार रखे थे। विदेशों के साथ सहयोग बढ़ाना चाहिये। लेकिन हमको यह देखना होगा कि दूसरे देशों की कौन सी बात हमारे हित में होगी। उनके वाद को यथावत स्वीकार नहीं किया जा सकता। हमको अपने देश की परिस्थितियों पर विचार करना चाहिये। विदेशी पूंजी अपने साथ वहां की संस्कृत भी लाती है। इसके प्रति सावधान भी रहना चाहिये।[6]

दीनदयाल उपाध्याय द्वारा व्यक्त विचार व चिंता आज दिखने लगी है। हमारे यहां भी ओल्डएज होम बनने लगे हैं। सरकार को माता पिता की देखभाल हेतु कानून बनाना पड़ता है। युवा पीढ़ी व बच्चों का खानपान बदल रहा है। फास्ट फूड के नुकसान बताये जाते हैं, उनका चलन बढ़ रहा है। चना–चबेना सत्तू, दुर्लभ हो रहे हैं। दीनदयाल उपाध्याय के विचार इस संदर्भ में प्रासंगिक हैं। वह इस समस्या से बाहर निकलने का रास्ता दिखा सकते हैं।

इसी प्रकार मार्क्सवादी व वामपंथी विचारधारा ने समाज व देश का अहित किया है। दीनदयाल उपाध्याय ने इसके प्रति भी सावधान किया था। इसमें उपभोगवाद को सशर्त बनाया गया था। व्यक्ति के जगह सत्ता को केंद्र में रखा गया। यह मान लिया गया कि व्यक्ति भी व्यवस्था का यंत्र मात्र है। सत्ता ही समाज को सही दिशा में संचालित करती रहेगी। इस वाद के नुकसान हुए। बचाव करने वाले चाहे जो दावा करें, लेकिन जिन देशों के लोगों ने दशकों तक जिस मार्क्सवादी व्यवस्था को भोग कर उसको अस्वीकार कर दिया, चीन में वही कम्यूनिस्ट व्यवस्था केवल राजनीति व सत्ता पर नियंत्रण और एकाधिकार के लिये बची है। आर्थिक क्षेत्र में वहां उपभोगवाद चरम पर है।

कम्यूनिस्टों ने भारत को भी विदेशी चश्मे से देखा। इसलिये उन्हें अपने देश में कोई अच्छाई नजर नहीं आती। इन्होंने आत्मगौरवविहीन समाज बनाने का प्रयास किया। जो कुछ अच्छा है वह विदेशों से मिला है। हमारा कुछ नहीं, यह विचार उन्होंने प्रसारित किया। केवल सरकार के भरोसे सुधार का विचार भी विफल रहा। विश्व में सोशलिस्ट विचार भी अब केवल सिद्धांतों में बचा है। व्यवहार में कहीं नजर नहीं आता। आज कौन हो जो राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि के विचारों पर अमल करता दिखाई देता है।

दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन शाश्वत विचारधारा से जुड़ता है। इसके आधार पर वह राष्ट्रभाव को समझने का प्रयास करते हैं। समस्याओं पर विचार करते हैं। उनका समाधान निकालते हैं। यह तथ्य ही भारत के अनुकूल प्रमाणित होता है। ऐसे में पहली बात यह समझनी होगी कि अन्य विचारों के भांति दीनदयाल उपाध्याय ने कोई वाद नहीं बनाया। एकात्म मानव, अन्त्योदय जैसे विचार वाद की श्रेणी में नहीं आते। यह दर्शन है। जो हमारी ऋषि परंपरा से जुड़ता है। इसके केंद्र में व्यक्ति या सत्ता नहीं है। जैसा कि पश्चिम या वामपंथी विचारों में कहा गया है। इसके विपरीत व्यक्ति, मन, बुद्धि, आत्मा सभी का महत्व है। प्रत्येक जीव में आत्मा का निवास होता है। आत्मा को परमात्मा का अंश माना जाता है। यह एकात्म दर्शन है। इसमें समरसता का विचार है। इसमें भेदभाव नहीं है। व्यक्ति का अपना हित स्वभाविक है। लेकिन यही सब कुछ नहीं है। उपभोगवाद से लोक कल्याण संभव नहीं है। इसमें व्यक्ति का भी कल्याण नहीं है। यदि ऐसा होता तो भौतिकवाद की दौड़ में कभी तो व्यक्ति को संतोष मिलता। लेकिन ऐसा नहीं होता। मन कभी संतुष्ट नहीं होता। व्यक्ति प्रारंभिक इकाई मात्र है। लेकिन वह परिवार का हिस्सा मात्र है। परिवार का हित हो तो व्यक्ति अपना हित छोड़ देता है। समाज का हित हो तो परिवार का हित छोड़ देना चाहिये। देश का हित हो तो समाज का हित छोड़

देना चाहिये। राष्ट्रवाद का यह विचार प्रत्येक नागरिक में होना चाहिये। मानव जीवन का लक्ष्य भौतिक मात्र नहीं है। जीवन यापन के साधन अवश्य होने चाहिए। ये साधन हैं। साध्य नहीं है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का विचार भी ध्यान रखना चाहिये। सभी कार्य धर्म से प्रेरित होने चाहिये। अर्थात लाभ की कामना हो, लेकिन का शुभ होना अनिवार्य है।

एकात्म मानव दर्शन की प्रासंगिकता सदैव रहेगी, क्योंकि यह शाश्वत विचारों पर आधारित है। दीनदयाल जी ने संपूर्ण जीवन की रचनात्मक दृष्टि पर विचार किया। उन्होंने विदेशी विचारों को सार्वलौकिक नहीं माना। यह तथ्य सामने भी दिखाई दे रहे हैं। भारतीय संस्कृति संपूर्ण जीवन व संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। इसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है। टुकड़ों–टुकड़ों में विचार नहीं हो सकता। संसार में एकता का दर्शन, उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचानना, उनमें परस्पर अनुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही संस्कृति है। प्रकृति को ध्येय की सिद्धि हेतु अनुकूल बनाना संस्कृति और उसके प्रतिकूल बनाना विकृति है। संस्कृति प्रकृति की अवहेलना नहीं करती। भारतीय संस्कृति में एकात्म मानव दर्शन है। मानव केवल एक व्यक्ति मात्र नहीं है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय व्यक्ति केवल एकवचन में तक सीमित नहीं है। समाज व समष्टि तक उसकी भूमिका होती है। राष्ट्र भी आत्मा होती है। समाज और व्यक्ति में संघर्ष का विचार अनुचित है। राज्य ही सब कुछ नहीं होता। यह राष्ट्र का एकमात्र प्रतिनिधि नहीं होता। राज्य समाप्त होने के बाद भी राष्ट्र का अस्तित्व रहता है।

दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र की आत्मा से लेकर जैविक खाद व व्यापार तक पर चिंतन करते हैं। उनके अध्ययन व मनन का दायरा कितना व्यापक था, इसकी कल्पना की जा सकती है। वह लिखते हैं कि अर्थव्यवस्था सदैव राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल होनी चाहिये। भरण, पोषण, जीवन के विकास, राष्ट्र की धारणा व हित के लिये जिन मौलिक साधनों की आवश्यकता होती है, उनका उत्पादन अर्थव्यवस्था का लक्ष्य होना चाहिये। पाश्चात्य चिंतन इच्छाओं को बराबर बढ़ाने और आवश्यकताओं की निरंतर पूर्ति को अच्छा समझता है। इसमें मर्यादा का कोई महत्व नहीं होता। उत्पादन सामग्री के लिये बाजार ढूंढना या पैदा करना अर्थनीति का प्रमुख अंग है। लेकिन प्रकृति की मर्यादा को नहीं भूलना चाहिये। प्रकृति के साथ उच्छृंखलता का व्यवहार नहीं होना चाहिये। खाद्य सुरक्षा की बात अब सामने आई। दीनदयाल जी ने इस पर बहुत पहले ही विचार कर लिया था। उनके अनुसार हमारा नारा यह होना चाहिये कि कमाने वाला खिलायेगा तथा जो जन्मा सो खायेगा। अर्थात खाने का अधिकार जन्म से प्राप्त होता है। बच्चे, बूढ़े, रोगी, अपाहिज सबकी चिंता समाज को करनी पड़ती है। इस कर्तव्य के निर्वाह की क्षमता पैदा करना ही अर्थव्यवस्था का काम है। अर्थशास्त्र इस कर्तव्य की प्रेरणा का विचार नहीं कर पाता। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी अर्थव्यवस्था का न्यूनतम स्तर है।

आज शिक्षा की व्यवस्था भी चिंता उत्पन्न करती है। एक तरफ महंगी शिक्षा है। इसका लाभ सीमित वर्ग उठा सकता है। दूसरी ओर जहां शिक्षा सस्ती है, उनकी दशा खराब है। वहां मूलभूत सुविधाएं भी नहीं हैं। शिक्षा व्यवसाय का रूप ले चुकी है। जिनका शिक्षा से कोई मतलब नहीं वह शिक्षण संस्थान के संचालक बन गये। दीनदयाल उपाध्याय को इसका भान था इसलिये उन्होंने लिखा था कि शिक्षा समाज का दायित्व है। बच्चों को शिक्षा देना समाज के अपने हित में है। आज शिक्षा की भांति चिकित्सा की दशा है। यह भी व्यवसाय का रूप धारण कर रही है। दीनदयाल जी निःशुल्क चिकित्सा का सुझाव देते हैं। वह मानते हैं कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मानव का विकास करने में असमर्थ सिद्ध हुई है। इसके विरोध में समाजवादी अर्थव्यवस्था आई। यह भी विफल हुई। इसने पूंजी का स्वामित्व राज्य के हाथों में देकर संतोष कर लिया। दीनदयाल जी का अंत्योदय विचार आज भी प्रासंगिक है। भारत में अनेकवाद अपनाये गये। अब तो वैश्विकरण और उदारीकरण को भी लंबा समय हो गया। लेकिन अमीर व गरीब के बीच की खाई बढ़ी है। यह व्यक्तिवादी व उपभोगवादी चिंतन का भी परिणाम है। विकास हुआ, मगर असंतुलित है। सत्ता व समाज दोनों को जिम्मेदारी से काम करने की दीनदयाल उपाध्याय प्रेरणा देते हैं। समाज के सबसे निचले पायदान पर जो व्यक्ति है, उसके उत्थान का प्रयास प्राथमिकता से होनी चाहिये। भवन निर्माण में पहले छत नहीं बनायी जा सकती। निर्माण नींव से शुरू होता है। इसी प्रकार जब भवन की सफाई करनी होती है तो यह कार्य ऊपर से प्रारंभ होता है। [7] फर्श का नंबर सबसे बाद में आता है। यह समाज और सत्ता दोनों पर लागू होने वाला विचार है।

इसी प्रकार दीनदयाल उपाध्याय ने हर खेत को पानी हर हाथ को काम का विचार दिया था। विडंबना देखिए आज छह दशक बाद भी यह समस्या बनी हुई है। यहां खेत में पानी का व्यापक अर्थ है। भारत कृषि प्रधान देश है। उन्नत खेती के लिए गंभीरता से प्रयास करने की आवश्यकता थी। खेती लाभप्रद होती, भंडारण बाजार की उचित व्यवस्था होती, तो गांव से शहर की ओर इतना पलायन नहीं होता। तब बड़ी संख्या में हमारे युवा कृषि कार्य में लगे होते। किसान तेजी से मजदूर बनते गए। उन्हें रोकने का कारगर प्रयास नहीं हुआ। शहर व गांव दोनों के बीच संतुलन स्थापित हो गया। विकास चाहे जितना हो जाए मगर हर हाथ को काम नहीं मिलेगा, तो भविष्य में सामाजिक स्तर पर गंभीर समस्याओं का सामना करना होगा। कृषि व उद्योग व्यापार का भी टकराव नहीं होना

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal) | Impact Factor: 7.580|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 7, July 2019

चाहिये। संतुलित विकास में दोनों का योगदान है। दीनदयाल उपाध्याय के विचार आज भी प्रासंगिक हैं। इन्हीं के माध्यम से देश की वर्तमान समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र पर अपने विचार व्यक्त किये। ये विचार उनके दीर्घकालीन अनुभव की देन थे। इन विचारों का सारांश निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत व्यक्त किया जा सकता हैं--

1. राष्ट्र का संगठन

राष्ट्र एक स्वाभाविक संगठन हैं। मानव-शरीर के सभी अवयव जिस प्रकार स्वाभाविक रूप से क्रियाशील रहते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र के विभिन्न घटक भी राष्ट्र सेवा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। एक राष्ट्रभाव की विस्मृति के कारण यदि घटक अंग शिथिल पड़ते हैं, तो राष्ट्र का पतन होता हैं और यदि ये पूरी तरह निष्क्रिय हो गये तो संपूर्ण राष्ट्र के विनाश का कारण बनते हैं।

2. अखण्ड भारत

दीनदयाल उपाध्याय की अखण्ड भारत की कल्पना में कटक से अटक, कच्छ से कामरूप तथा काश्मीर से कन्याकुमारी तथा संपूर्ण भूमि के कण-कण को पुण्य और पवित्र नहीं अपितु आत्मीय मानने की भावना अखण्ड भारत के अंतर्गत अभिप्रेत हैं।

3. भारतीयता की अभिव्यक्ति

दीनदयाल उपाध्याय का विचार था कि यदि भारत की आत्मा को समझना हैं तो राजनीति अथवा अर्थनीति के चश्मे से न देखकर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ही देखना होगा। विश्व को हम अपनी सांस्कृतिक सहिष्णुता तथा कर्तव्यपरायणता से बहुत कुछ समझा सकते हैं।

4. स्वराज्य एक साधन

स्वराज्य किसी भी राष्ट्र का प्राण हैं। स्वराज्य समाज की वह स्थिति हैं, जिसमें समाज अपने विवेक के अनुसार निश्चित ध्येय की ओर बढ़ सकता हैं।

5. व्यक्ति-राष्ट्र का उपकरण

व्यक्ति राष्ट्र की आत्मा को प्रकट करने का एक साधन हैं। इस प्रकार व्यक्ति अपने स्वयं के अतिरिक्त राष्ट्र का भी प्रतिनिधित्व करता हैं। इतना ही नहीं, अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए राष्ट्र जितनी भी संस्थाओं को जन्म देता हैं, उसका उपकरण व्यक्ति ही हैं और इसलिए वह उनका भी प्रतिनिधि हैं। राष्ट्र में व्यापक जो समष्टियाँ हैं, जैसे मनुष्य उनका प्रतिनिधित्व भी व्यक्ति ही करता हैं।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal) | Impact Factor: 7.580|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 7, July 2019

6. व्यक्ति और समाज

व्यक्ति तथा समाज में किसी प्रकार विरोध नहीं हैं। विकृतियाँ तथा अव्यवस्था की बात छोड़ दे, उन्हें दूर करने के उपाय भी जरूरी होते हैं, किन्तु वास्तविक सत्य यह हैं कि व्यक्ति और समाज अभिन्न और अभिवाज्य हैं। सुंसस्कृत अवस्था यह हैं कि व्यक्ति अपनी चिन्ता करते हुए भी समाज की चिन्ता करेगा।

7. राष्ट्र के विधायक तत्व

उपाध्यायजी ने किसी राष्ट्र के लिए चार आवश्यक तत्व बताये हैं-- प्रथम भूमि और जन जिसे देश कहते हैं। द्वितीय, सबकी इच्छा शक्ति अर्थात् सामूहिक जीवन का संकल्प। तृतीय, एक व्यवस्था जिसे नियम अथवा संविधान कहा जा सकता हैं, जिसे वे धर्म कहते हैं तथा चतुर्थ हैं जीवन आदर्श। इन चारों के सम्मिलित स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता हैं। राज्य और व्यक्ति के बीच सावयवी एकता बताते हुए उन्होंने कहा, जिस प्रकार व्यक्ति के लिए शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा जरूरी हैं तथा इन चारों से मिलकर व्यक्ति का निर्माण होता हैं, उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म और आदर्श के समुच्चय से राष्ट्र का निर्माण होता हैं।

8. चित्ति-राष्ट्र की आत्मा

उपाध्यायजी का विचार है कि राष्ट्र की भी एक आत्मा होती हैं। इसे 'चित्ति' कहा जाता हैं। यह किसी समाज की जन्मजात प्रकृति होती हैं। इसे लेकर ही प्रत्येक समाज का निर्माण होता हैं। किसी भी समाज की संस्कृति की दिशा का निर्धारण इसी चित्ति के अनुकूल ही होता हैं। अर्थात् जो चीज इस चित्ति के अनुकूल होती है वह संस्कृति में सम्मिलित कर ली जाती हैं। चित्ति वह मापदंड हैं, जिसके द्वारा प्रत्येक वस्तु को मान्य अथवा अमान्य किया जाता हैं। यह चित्ति राष्ट्र के प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा प्रकट होती हैं। इसी आचरण के आधार पर राष्ट्र खड़ा होता हैं।

9. राष्ट्र एवं राज्य में अंतर

उपाध्याय जी ने राष्ट्र एवं राज्य में अंतर किया हैं। उनका मत हैं कि राष्ट्र एक स्थायी सत्य हैं। राष्ट्र की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये राज्य उत्पन्न होता हैं। राष्ट्र निर्माण केवल नदियों, पहाड़ों, मैदानों या कंकड़ों के ढेर से ही नहीं होता और न ही यह केवल भौतिक इकाई ही हैं। इसके लिए देश में रहने वाले लोगों के हृदयों में उसके प्रति असीम श्रद्धा की अनुभूति होना प्रथम आवश्यकता हैं। इसी श्रद्धा की भावना के कारण हम अपने देश को मातृभूमि कहते हैं।

राज्य की आवश्यकता दो परिस्थितियों में होती हैं। पहली आवश्यकता तब होती हैं जब राष्ट्र के लोगों में कोई विकृति आ जाए। ऐसी स्थिति में उत्पन्न समस्याओं के नियमन के लिए जटिलता उत्पन्न हो जाती हैं तथा सार्वजनिक जीवन में व्यवस्था का निर्माण करना आवश्यक हो। निर्बलता, असहायता, दरिद्रता का लाभ शक्ति सम्पन्न तथा साधन सम्पन्न वर्ग न उठा सकें, सब न्याय की सीमाओं में अपने कार्य को करें, इसके लिए राज्य का निर्माण किया जाता हैं।[7]

संदर्भ

1. Deen Dayal Upadhyay book-2012
2. Political thoughts-2022
3. Sociological views -2021
4. Liberal thoughts of Pandit Deen Dayal-2011

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal) | Impact Factor: 7.580|

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 6, Issue 7, July 2019

5. Women empowerment sayings -2001
6. India as free country-2003
7. Constitution -2009